डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

विमर्श

मार्क्स और आज का समय

एरिक हॉब्सबाम

अनुवाद - रामकीर्ति शुक्ल

सन 2007 में, मार्क्स के जन्मदिन (14 मार्च) से लगभग दो सप्ताह पहले, एक यहूदी पुस्तक सप्ताह का आयोजन किया गया था। आयोजन-स्थल उस स्थान से अर्थात ब्रिटिश म्यूजियम के राउण्ड टेबिल रूम से चंद कदमों पर ही था जिसके साथ मार्क्स का नाम अभिन्न रूप से आज भी जुड़ा हुआ है और जो उनका चहेता स्थान था। आयोजन में दो बिल्कुल ही अलग किस्म के समाजवादियों को अर्थात मुझे और याक अताली को मार्क्स को श्रद्धांजलि देने के लिए खास तौर से बुलाया गया था। लेकिन अगर आयोजन की तारीख और स्थल पर आप विचार करें तो दोनों ही बहुत चौंकानेवाले थे। कोई यह नहीं कह सकता कि 1883 में मार्क्स की मृत्यु एक असफल और हताश व्यक्ति की मृत्यु थी क्योंकि उनका लेखन जर्मन और खासकर रूसी बुद्धिजीवियों पर अपना रंग पहले ही जमाना शुरू कर चुका था और मार्क्स के प्रशंसक और समर्थक जर्मनी के मजदूर आन्दोलन का नेतृत्व सम्हालने की कोशिश में लगे हुए थे। लेकिन 1883 में मार्क्स के लेखन और विचारों को ले कर सुगबुगाहट अपेक्षकृत काफी कम थी। उन्होंने कुछ बहुत ही प्रखर और मुखर पैम्फलेटों का लेखन कर लिया था और 'पूँजी' का खाका भी तैयार कर लिया था। यह सारा कुछ मार्क्स के जीवन काल के अंतिम दशक तक हो चुका था। और जब उनसे मिलने गए एक व्यक्ति ने उनकी पुस्तकों के बारे में पूछा तो उनका सीधा सा जवाब था, 'कौन-सी पुस्तकें?' 1848 की असफल क्रान्ति के बाद 1864-73 का तथाकथित प्रथम इण्टरनेशनल भी बहुत कुछ उपलब्ध नहीं कर पाया था। उनकी आधी जिदंगी ब्रिटेन में बीती थी लेकिन वहाँ की राजनीति और बौद्धिक परंपरा में वे तब तक अपने लिए कोई खास स्थान नहीं बना पाए थे।

इस सबको देखते हुए उनकी मृत्यु-उपरांत सफलता और ख्याति चकित करती है। उनकी मृत्यु के बीस-पच्चीस वर्षों के भीतर यूरोप के मजदूर वर्गों के हिमायती राजनैतिक दल, जो या तो उनके नाम पर जन्मे थे अथवा जो उनका नाम लिए बिना उनके विचारों से प्रभावित थे, जनतांत्रिक प्रणालीवाले देशों में - ब्रिटेन अपवाद था - चुनावों में 15 से 47 प्रतिशत मतदाताओं का समर्थन प्राप्त करने में सफल हो चुके थे। 1918 आते-आते ये दल, जो अभी तक विपक्ष में रहते आए थे, या तो अपने आप सत्ता हथियाने में कामयाब हो चुके थे अथवा सत्ता पक्ष के प्रमुख घटक बन गए थे। फासीवाद के उदय और समाप्ति तक उनकी यह स्थिति बनी रही हालाँकि इनमें से तमाम दल अपनी प्रारंभिक प्रेरणा का नाम लेने से बचने का भी प्रयास करने लगे थे। ये सारे दल आज भी मौजूद हैं। इस बीच मार्क्स से प्रेरणा ग्रहण करनेवाले लोगों ने उन देशों में भी मार्क्स की विचारधारा के आधार पर बनाए गए दलों और समूहों की स्थापना कर ली है जहाँ जनतांत्रिक शासन प्रणालियाँ नहीं थीं / हैं और साथ ही तीसरी दुनिया के देशों में

भी उनका विस्तार और प्रचार हुआ है। मार्क्स की मृत्यु के सत्तर वर्ष बाद दुनिया की एक तिहाई आबादी कम्युनिस्ट पार्टियों की सरकारोंवाले देशों में रह रही थी। इन सरकारों का घोषित उद्देश्य था मार्क्स के विचारों को व्यावहारिक स्तर पर साकार करना, उनकी जनोन्मुखी आकांक्षाओं को मूर्त रूप देना। कम्युनिस्ट समर्थित सरकारों और दलों की संख्या घटी है, इसमें कोई शक नहीं, लेकिन दुनिया की लगभग बीस फीसदी आबादी अभी भी मार्क्स-प्रेरित व्यवस्थाओं में रह रही है। बावजूद इसके कि इन व्यवस्थाओं के कर्त्ता-धर्ता और संचालक अपनी नीतियों में मार्क्सवाद से अथवा मार्क्स के विचारों से काफी दूर चलते जा रहे हैं। संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि बीसवीं सदी पर अगर किसी एक चिंतक की कभी न मिटनेवाली छाप पड़ी है तो उसका नाम है कार्ल मार्क्स। इग्लैंण्ड में हाईगेट कब्रगाह में हर्बर्ट स्पेंसर और कार्ल मार्क्स एक दूसरे से थोड़ी ही दूरी पर दफनाए हुए हैं। जब दोनों जीवित थे तब हर्बर्ट स्पेंसर को अपने युग का अरस्तू होने का सम्मान प्राप्त था और कार्ल मार्क्स, उन्हें तो बस लोग एक ऐसे मामूली आदमी के रूप में जानते थे जो हैम्पस्टेड के निचले इलाके में एक छोटे से मकान में रहते थे और अपने एक दोस्त की मेहरबानी से अपना खर्चा-पानी चलाते थे। और आज हर्बर्ट स्पेंसर को शायद ही कोई जानता हो जबकि जापान अथवा भारत से आनेवाले उम्मदराज सैलानी मार्क्स की कब्र पर जाए बिना अपनी यात्रा पूरी नहीं मानते और ईरान तथा इराक के निर्वासित कम्युनिस्टों की दिली ख्वाहिश यही होती है कि मरने के बाद उन्हें भी मार्क्स के आस-पास ही दफनाया जाय।

संयुक्त समाजवादी सोवियत गणतंत्र के भहराने के बाद कम्युनिस्ट सरकारों और कम्युनिस्ट राजनैतिक दलों के युग का अंत हो गया लगता है। जहाँ वे आज अस्तित्व में हैं भी जैसे चीन और भारत, में, वहाँ उन्होंने लेनिनवादी-मार्क्सवादी विचारधारा की पुरानी परियोजना को लगभग छोड़ चुके हैं। सोवियत संघ के पतन के बाद कार्ल मार्क्स एक बार फिर 'नो मैन्स लैण्ड' में चले गए। कम्युनिज्म अपने को उनका एक मात्र असली वारिस होने का दावा करता था और मार्क्स के विचारों को मुख्यतः इसी कम्युनिज्म के साथ जोड़ा जाता था। 1956 में जब खुश्चेव ने स्तालिन की निन्दा करते हुए सार्वजनिक तौर पर उनसे अपने को अलग किया तो मार्क्स और लेनिन से असहमति व्यक्त करनेवाली प्रवृत्तियों की बाढ़ सी आ गयी लेकिन इन प्रवृत्तियों को संचालित करने और हवा देनेवाले लोगों में सर्वाधिक ऐसे ही लोग थे जो कभी मार्क्स अथवा लेनिन के नाम की कसमें खाया करते थे अर्थात वे सबके सब भूतपूर्व कम्युनिस्ट थे। इस तरह अपनी मृत्यु की शतवार्षिकी के बाद पहले बीस वर्षों के दौरान उन्हें बीते हुए कल का आदमी माना जाने लगा था जिसकी वर्तमान दुनिया में कोई संगत भूमिका नहीं रह गई थी। जिस आयोजन का उल्लेख मैंने लेख के आरंभ में किया है उसकी चर्चा करते हुए एक पत्रकार ने लिखा कि आयोजकों का उद्देश्य, शायद, इतिहास की रद्दी की टोकरी से मार्क्स को बाहर लाना था। इसके बावजूद मुझे विश्वास है कि मार्क्स इक्कीसवीं सदी के चिंतक हैं।

अभी हाल ही में बीबीसी द्वारा कराए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार बी.बी.सी. के कार्यक्रम के श्रोताओं ने कार्ल मार्क्स को महानतम दार्शनिक बताया है। इस बात की सच्चाई को ले कर सवाल उठाए जा सकते हैं लेकिन अगर गूगल के सर्च कालम में मार्क्स का नाम टाइप करके बटन दबाएँ तो आपको मालूम हो जाएगा कि डार्विन और आइन्स्टीन के साथ मार्क्स ही महानतम बुद्धिजीवी के रूप में सामने आएँगे। एडम स्मिथ (पश्चिमी दुनिया के आधुनिक अर्थशास्त्रियों के आदि पूर्वज) और फ्रायड उनसे मीलों पीछे हैं।

मेरे विचार से इसके पीछे दो कारण हैं। पहला कारण यह है कि सोवियत संघ के विघटन के बाद सैद्धांतिक स्तर पर मार्क्स सोवियत संघ के उस सरकारी मार्क्सवाद से मुक्त हो गए जिसे लेनिनवाद से जोड़ कर ही हमेशा देखा जाता

था। इसी तरह वे राज्य - व्यावहारिक स्तर पर जहाँ मार्क्सवाद के नाम पर लेनिनवादी अथवा इसी तरह की राज्य-व्यवस्थाएँ बनी थीं, उनसे भी मार्क्स मुक्त हो गए। यह साफ जाहिर हो गया कि दुनिया के बारे में मार्क्स ने जो कुछ कहा-सोचा था उसमें से अभी तक काफी कुछ ऐसा बचा हुआ है जो हमारे लिए महत्वपूर्ण है और काम का है। दूसरा कारण भी बहुत महत्वपूर्ण है। 1990 के दशक में जो भूमण्डलीकृत पूँजीवादी दुनिया उभर कर सामने आई वह बड़े अजीब तरीके से उसी दुनिया की तरह थी जिसका पूर्वानुमान अथवा पूर्वाभास मार्क्स ने कम्युनिस्ट घोषणपत्र में किया था। सार्वजनिक रूप से इसका खुलासा तब हुआ जब इस नन्ही-मुन्नी किताब की डेढ़ सौंवी जयंती मनाई जा रही थी अर्थात 1998 में और, संयोग कह लीजिए, यह वही साल था जब भूमण्डलीय अर्थ-व्यवस्था में एक नाटकीय उछाल आया था। विरोधाभास यह था कि इस बार समाजवादियों के बजाय पूँजीवादियों ने मार्क्स का पुनराविष्कार किया क्योंकि समाजवादी इतने हताश और मायूस थे कि उन्होंने अवसर के अनुरूप समारोह भी नहीं मनाया। मुझे आज भी याद करके अचंभा होता है जब मेरे पास संयुक्त राज्य अमेरिका की एक इन-फ्लाइट पत्रिका (ऐसी पत्रिका जो हवाई यात्रा करनेवाले मुसाफिरों के लिए ही होती है) ने मुझसे मार्क्सवाद पर एक लेख लिखने का अनुरोध किया। इस पत्रिका के अस्सी फीसदी पाठक बड़ी-बड़ी कम्पनियों के एग्जीक्यूटिव होते हैं। वास्तव में इस पत्रिका के संपादक ने कहीं मेरा एक छोटा सा लेख घोषणापत्र पर पढ़ा था और उसने सोचा कि पत्रिका के पाठकों को इसमें रुचि हो सकती है। वह नया लेख नहीं चाहता था बल्कि उसी लेख को अपनी पत्रिका में फिर से छापने के लिए मेरी मंजूरी चाहता था। इससे भी अधिक अचंभा मुझे तब हुआ जब नई शताब्दी की शुरुआत में जॉर्ज सोरोस ने मार्क्स के बारे में मेरी राय जानना चाहा। यह जानते हुए कि हमारे विचारों में जमीन-आसमान का अंतर है, मैंने सोरोस को कोई जवाब नहीं दिया। थोड़ी देर बाद सोरोस ने ही कहा, "उस आदमी ने (मार्क्स ने) डेढ़ सौ साल पहले ही उस पूँजीवाद को देख लिया था जिस पर आज हमें गंभीरता से सोचना चाहिए।" और सोरोस ने स्वंय मार्क्स को गंभीरता से पढ़ना और उन पर सोचना शुरू किया। उस समय जो लेखक कम्युनिज्म और मार्क्स के नाम पर नाक-भौं सिकोड़ लिया करते थे उन्होंने भी बाद में अपना रवैया बदल दिया। और इस संदर्भ में एक महत्वपूर्ण नाम है याक अताली का जिन्होंने मार्क्स के जीवन और लेखन पर लिखना शुरू कर दिया। अताली यह भी सोचते हैं कि हम में से वे लोग जो दुनिया का अलग किस्म का और बेहतर रूप देखना चाहते हैं उनसे कहने के लिए मार्क्स के पास बहुत कुछ है। इस हिसाब से भी मार्क्स की ओर लौटने की इच्छा का स्वागत किया जाना चाहिए।

अक्टूबर 2008 में जब लंदन के फाइनेन्सियल टाइम्स में "पूँजीवाद की मृत्युपीड़ा" जैसी हेडलाइन छपी तब इस बात में कोई संदेह नहीं रह गया कि मार्क्स सार्वजनिक बौद्धिक परिदृश्य पर वापस आ गए हैं। एक ओर जिस तरह भूमंण्डलीय पूँजीवाद 1930 के दशक के बाद सबसे बड़ी उठा-पटक और संकट से गुजर रहा है उससे यह सिद्ध होता है कि मार्क्स मंच पर बने रहेंगे, दूसरी ओर, नई सदी के मार्क्स पिछली सदी के मार्क्स से निश्चित ही अलग दिखेंगे।

पिछली सदी में लोग मार्क्स के बारे में जो सोच रहे थे उस पर तीन बातों का असर बहुत ज्यादा था। पहला था दुनिया का दो प्रकार के देशों में विभाजन - वे देश जहाँ क्रान्ति उनकी कार्य-सूची में था और वे देश जहाँ ऐसा नहीं था अर्थात उत्तरी अटलांटिक और प्रशांत महासागर क्षेत्र के विकसित पूँजीवादी देश और शेष विश्व के देश। इसी तथ्य से जुड़ा और इसका अनुवर्ती दूसरा तथ्य है - मार्क्स की विरासत स्वाभाविक रूप से जनतांत्रिक और सुधारवादी विरासत और रूसी क्रांति से अत्यधिक प्रभावित क्रान्तिकारी विरासत में विभाजित हो गई। 1917 के पश्चात् तीसरे कारण के चलते यह और अधिक स्पष्ट हो गया : 19वीं सदी के पूँजीवादी और बुर्जुआ समाज का,

जिसे मैंने महाविपत्ति का युग कहा है उसमें पर्यवसान जो 1914 और 1940 के बीच के वर्षों में घटित हुआ। संकट इतना जोरदार था कि तमाम लोग यह संदेह करने लगे कि क्या पूँजीवाद इससे कभी भी उभर पाएगा। क्या यह समाजवादी अर्थव्यवस्था के सामने पराजित हो जाएगा जैसा कि मार्क्सवाद से बहुत दूर रहनेवाले जोसेफ शुम्पीटर 1940 में सोच रहे थे? पूँजीवाद फिर उठ खड़ा हुआ लेकिन अपने पुराने रूप को बचा नहीं पाया। इसी समय विकल्प के रूप में सामने आई समाजवादी अर्थव्यवस्था उस समय अभेद्य लग रही थी। 1929 और 1940 के बीच समाजवादी राजनीति को अस्वीकार करनेवाले गैर-समाजवादी लोगों के लिए भी यह विश्वास करना असंगत नहीं लग रहा था कि पूँजीवाद अपनी अंतिम साँसें गिन रहा है और सोवियत संघ यह सिद्ध करने में लगा था कि वह पूँजीवाद को इतिहास में ढकेलने में सफल हो जाएगा। स्पुतनिक उपग्रह के वर्ष में इस विश्वास में काफी दम लग रहा था। लेकिन 1960 के बाद इस विश्वास का खोखलापन धीरे-धीरे लोगों के सामने जाहिर होने लगा।

ये घटनाएँ और नीति तथा सिद्धांत के क्षेत्र में इनका प्रभाव मार्क्स और एंगिल्स की मृत्यु के बाद की कथा का अंश है। मार्क्स के अपने अनुभवों और आकलनों की सीमा से ये बाहर हैं। बीसवीं सदी के मार्क्सवाद का हमारा आकलन स्वंय मार्क्स के चिंतन पर आधारित न हो कर उनके लेखन के उनके मृत्यु-उपरांत की गई व्याख्याओं और संशोधनों पर आधारित है। अधिक से अधिक हम यह दावा कर सकते हैं कि 1890 के अंतिम वर्षों में, अर्थात मार्क्सवाद के पहले बौद्धिक संकट के दौरान, मार्क्सवादियों की पहली पीढ़ी के वे लोग जो मार्क्स और उनसे भी अधिक एंगिल्स के व्यक्तिगत सम्पर्क में आए थे, संशोधनवाद, साम्राज्यवाद और राष्ट्रवाद जैसे बीसवीं शताब्दी में सामने आनेवाले मुद्दों पर बहस प्रारंभ कर चुके थे। मार्क्सवाद से संबंधित बहस का अधिकांश भाग बीसवीं सदी से जुड़ा हुआ है, खासकर समाजवादी अर्थव्यवस्था के भावी स्वरूप को ले कर चलनेवाली बहस जो मुख्य रूप से पहले विश्व युद्ध की अर्थव्यवस्था और युद्धोत्तर वर्षों की अर्ध-क्रांतिकारी अथवा क्रांतिकारी संकटों की उपज थी। इस बहस के रेशे मार्क्स में मौजूद नहीं हैं।

इस तरह मार्क्स यह दावा करने की स्थिति में शायद ही थे कि उत्पादन के साधनों के त्वरित विकास के लिए पूँजीवाद की तुलना में समाजवाद श्रेष्ठ है। यह दावा उस दौर का है जब दोनों विश्व युद्धों के बीच के वर्षों में पूँजीवाद का मुकाबला सोवियत संघ की पंचवर्षीय योजनाओं से हुआ। वास्तव में मार्क्सवाद का दावा यह नहीं था कि उत्पादन के साधनों की पूरी क्षमता को विकसित करने में पूँजीवाद अपनी अंतिम सीमा तक पहुँच गया है। उसका मानना यह था कि पूँजीवादी विकास की अनवरुद्ध लय समय-समय पर अतिउत्पादन का संकट पैदा करती रहती है जो देर-सबेर अर्थव्यवस्था के संचालन से मेल नहीं खाता और यह अतिउत्पादन ऐसे सामाजिक संघर्षों को जन्म देता है जिनसे यह उबर नहीं सकता। अपने स्वभाव के चलते ही पूँजीवाद सामाजिक उत्पादन के बाद की अर्थव्यवस्था को अनुशासित कर सकने में अक्षम होता है। उसका मानना था कि ऐसा करने की क्षमता केवल समाजवाद में है।

इसीलिए इससे अचंभित नहीं होना चाहिए कि कार्ल मार्क्स पर होनेवाली बहसों में और उनके सिद्धांतों के आकलन के केन्द्र में "समाजवाद" रहता आया है। इसका कारण यह नहीं था कि समाजवादी अर्थव्यवस्था की प्रायोजना केवल मार्क्सवादी है - ऐसा नहीं है - अपितु मार्क्सवाद से प्रभावित प्रेरित दल इस प्रायोजना में विश्वास रखते थे और अपने को कम्युनिस्ट कहनेवाले दलों ने इसे व्यवहारतः सिद्ध भी कर दिया। अपने बीसवीं सदी के रूप में यह प्रायोजना मृत हो चुकी है। सोवियत संघ और अन्य केन्द्र-नियोजित अर्थव्यवस्थाओं के लिए प्रयुक्त "समाजवाद"

अर्थात सिद्धांत में बाजार-रहित, राज्य-संचालित और राज्य-नियंत्रित अर्थव्यवस्थाएँ परिदृश्य से गायब हो चुकी हैं और उसके फिर लौटने की संभावना नहीं लगती। समाजवादी अर्थव्यवस्था की स्थापना को ले कर सामाजिक-जनतांत्रिक इच्छाएँ/आकांक्षाएँ हमेशा भविष्य का आदर्श रही हैं लेकिन बीसवीं सदी का अंत आते-आते ये इच्छाएँ भी तिरोहित हो चुकी हैं।

सामाजिक जनतंत्रवादियों के मानस में बसा समाजवाद का मॉडल और कम्युनिस्ट सरकारों द्वारा स्थापित समाजवाद किस सीमा तक मार्क्स के विचारों-चिंतनों का हिस्सा था? यह महत्वपूर्ण है कि समाजवाद की आर्थिक संस्थाओं और अर्थशास्त्र से संबंधित स्पष्ट वक्तव्यों से मार्क्स हमेशा जान-बूझ कर अपने को बचाते रहे और कम्युनिस्ट समाज के मूर्त रूप के बारे में इसके अलावा कभी कुछ नहीं कहा कि इसे निर्मित अथवा यांत्रिक ढंग से उत्पादित नहीं किया जा सकता बल्कि इसका विकास समाजवादी समाज से ही संभव हो पाएगा। इस तरह के सामान्य संकेत मार्क्स के उत्तराधिकारारियों को कोई निश्चित दिशा और रणनीति नहीं दे सकते थे। सच्चाई तो यह है कि क्रांति के पहले इस तरह की बहसें उनके हिसाब से महज अकादमिक ही हो सकती हैं अथवा हवाई। ब्रिटेन की लेबर पार्टी के संविधान के 'नियम चार' का उदाहरण ले कर कहा जा सकता है कि यह "उत्पादन के साधनों के सामूहिक मालिकाने" पर आधारित होगा जिसका मतलब यह लगाया गया कि देश के उद्योगों के राष्ट्रीयकरण के माध्यम से इस उद्देश्य को पूरा किया जा सकता है। मजे की बात है कि केन्द्रीकृत सामाजिक अर्थव्यवस्था का पहला सिद्धांत समाजवादियों द्वारा व्याख्यायित किए जाने के बजाय 1908 में इटली के एक गैर-समाजवादी इनरिको बेरोन द्वारा व्याख्यायित किया गया था। प्रथम विश्व युद्ध के बाद व्यावहारिक राजनीति के एजेण्डा पर इस सिद्धांत के आने के पहले किसी ने भी इसके बारे में नहीं सोचा था। उस समय अर्थव्यवस्था को ले कर जो समस्याएँ पैदा हुईं उनके लिए समाजवादी तैयार नहीं थे क्योंकि उनके सामने अतीत का अथवा कोई अन्य उदाहरण नहीं था।

समाज द्वारा व्यवस्थित होनेवाली किसी भी अर्थव्यवस्था में "योजना" अन्तर्निहित होती है लेकिन मार्क्स ने इस बारे में कोई स्पष्ट निर्देश नहीं दिया है और क्रान्ति के बाद सोवियत संघ में जब इसे आजमाया गया तो इसकी रूपरेखा अधिकांशतः उसी समय बनाई गई थी। सैद्धांतिक रूप से इसे कुछ अवधारणाओं के आधार पर तैयार किया गया था (उदाहरण के लिए, लियांतीफ की निवेश-उत्पादन अवधारणा) और इसके लिए जरूरी आँकड़े भी इकट्ठे किए गए थे। बाद में इन तरीकों को गैर-समाजवादी देशों में भी व्यापक स्तर पर इस्तेमाल किया गया। व्यवहार में प्रथम विश्व युद्ध के दौरान गढ़ी गई युद्ध-अर्थव्यवस्थाओं का भी अनुसरण किया गया, विशेष रूप से जर्मन अर्थव्यवस्था का। बिजली उद्योग पर विशेष ध्यान दिया गया जिसके बारे में जर्मन और अमेरिकी एग्जीक्यूटिवों ने लेनिन को सूचित किया था। सोवियत संघ की योजनाधारित अर्थव्यवस्था का आदर्श यही युद्ध अर्थव्यवस्थाएँ थीं जिनमें पहले से ही कुछ विशेष लक्ष्य निर्धारित कर लिए जाते थे - अत्यधिक शीघ्रता से उद्योगीकरण, युद्ध में विजय, एटम बम का निर्माण अथवा चंद्रमा पर आदमी भेजना और फिर इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए संसाधनों की व्यवस्था करना, इत्यादि। यह सारा कुछ केवल समाजवाद में ही संभव हो सकता है, ऐसी बात नहीं है। पहले से ही निर्धारित लक्ष्यों को ध्यान में रख कर काम करना और कमोबेश अच्छे ढंग से करना संभव होता है लेकिन सोवियत अर्थव्यवस्था वास्तव में इसके आगे कभी गई ही नहीं। हालाँकि इस दिशा में इसने 1960 के बाद लगातार प्रयास जारी रखे लेकिन नौकरशाही द्वारा निर्देशित आर्थिक संरचना में निहित कठिनाइयों से यह अपना पिण्ड कभी भी छुड़ा नहीं पाई।

समाजवादी जनतंत्र ने मार्क्सवाद में अलग तरीके से बदलाव किया और इसके लिए या तो समाजवादी अर्थव्यवस्था के निर्माण को स्थगित रखा अथवा/और सकारात्मक रूप से मिश्रित अर्थव्यवस्था के अलग-अलग रूपों का क्रियान्वयन किया। जब तक सामाजिक जनतंत्रवादी दल एक पूर्ण समाजवादी अर्थव्यवस्था बनाने के लिए प्रतिबद्ध रहे तब तक इसका मतलब था कि इस विषय पर सोच-विचार हो। इस विषय पर सबसे आकर्षक विचार आया फेबियन समाजवाद के गैर-मार्क्सवादी चिंतकों जैसे सिडनी वेब और बियेत्रिस वेब से जिनका मानना था कि पूँजीवाद का समाजवाद में रूपांतरण धीरे-धीरे सुधारों के चलते होगा और इसी लिए वेब-दम्पति ने समाजवाद के सांस्थानिक रूप पर कुछ राजनैतिक विचार प्रस्तुत किए थे हालाँकि इसके आर्थिक पहलुओं पर वे मौन थे। मुख्य मार्क्सवादी 'संशोधनवादी' एडवर्ड बर्नस्टीन ने इस समस्या को रूपांकित किया -- इस आग्रह के साथ कि सुधारवादी आन्दोलन ही सब कुछ है और अंतिम उद्देश्य में कोई व्यावहारिक यथार्थ नहीं होता। वास्तव में अधिकांश सामाजिक जनतंत्रवादी दलों ने, जो पहले विश्व युद्ध के पश्चात सत्ता में आए, संशोधनवादी नीति पर चलते रहे और पूँजीवादी अर्थव्यवस्था को इस शर्त के साथ चलने दिया कि उन्हें श्रमिकों की कुछ माँगों को मानते रहना चाहिए। इस प्रवृत्ति की क्लासिक पुस्तक मानी जाती है 1956 में प्रकाशित एन्थनी क्रासलैण्ड की 'द फ्यूचर ऑफ सोशलिज्म' (समाजवाद का भविष्य) जिसमें दलील दी गई कि क्योंकि 1945 के बाद पूँजीवाद ने समृद्ध समाज के निर्माण की समस्या सुलझा ली है इसलिए सार्वजनिक उद्यम (क्लासिकी रूप में अथवा अन्य प्रकार से राष्ट्रीयकरण) जरूरी नहीं रह गया है और समाजवादियों का एकमात्र कार्य है राष्ट्रीय सम्पदा के समान वितरण को सुनिश्चित करना। ये सारी बातें मार्क्स और मार्क्सवाद से बहुत दूर की थीं और समाजवाद के उस समाजवादी सपने से भी बहुत दूर थीं जिसमें बाजार-मुक्त समाज की कल्पना की गई थी और जिसे शायद मार्क्स भी अपने मन से सँजोए रहे होंगे।

यहाँ मैं यह भी जोड़ना चाहूँगा कि राज्य और सरकारी नियंत्रण में चलनेवाले सार्वजनिक उद्योगों की भूमिका को ले कर आर्थिक नव-उदारवादियों और उनके आलोचकों के बीच हाल के वर्षों में चलनेवाली बहस सिद्धांत रूप में न तो मार्क्सवाद से जुड़ी है और न ही समाजवादी चिंतन से।

1970 के बाद के वर्षों में स्वच्छन्द और मुक्त बाजार का सिद्धांत जोर पकड़ता रहा है और इस विकृति को आर्थिक यथार्थ के रूप में अनूदित करने का प्रयास लगातार किया जा रहा है। इस सिद्धांत के अनुसार राज्य को लाभ कमानेवाले उद्यमों के नियमन और नियंत्रण से अपने को अलग रखना चाहिए। ऊपर जिस बहस का जिक्र किया गया है वह इसी सिद्धांत पर आधारित है। प्रयास है मानव समाज को उस स्व-नियंत्रित और अधिकतम धन अथवा समृद्धि अर्जित करनेवाले बाजार के हाथों सौपने का जो ऐसे लोगों से भरा हुआ है जो अपने हितों की बुद्धिसम्मत रक्षा कर रहे हैं। अमेरिका सहित किसी भी विकसित अर्थव्यवस्थावाले देश में पूँजीवादी विकास के किसी भी प्रारंभिक चरण में उक्त प्रयास की कोई नजीर नहीं मिलती। इस विचारधारा के उन्नायक एडम स्मिथ के लेखन से वैसे ही अतिवादी निष्कर्ष निकाल रहे थे जैसे बोल्शेविक अर्थशास्त्री मार्क्स के लेखन में पूर्णतयः राज्य-निर्देशित अर्थव्यवस्था के सिद्धांत की तलाश कर रहे थे। आश्चर्य नहीं कि यह "जड़ बाजारवाद" जो अर्थव्यवस्था के बजाय धर्माचार के अधिक निकट था, अतंतः असफल साबित हुआ।

टूटे मनोबलवाले सामाजिक जनतंत्रवादी दलों की महत्वाकाक्षाओं में बुनियादी तौर पर रूपांतरित समाज के सपने के लोप और साथ ही राज्य-नियंत्रित अर्थव्यवस्था के सिद्धांत के लोप ने बीसवीं सदी में समाजवाद को लेकर चलनेवाली बहसों के अधिकांश को व्यर्थ सिद्ध कर दिया है। ये बहसें कार्ल मार्क्स के चिंतन से थोड़ी अलग जरूर

थीं लेकिन इनके पीछे प्रेरणा उन्हीं की थी और उन्हीं का नाम लेकर ये बहसें चलाई जाती हैं। दूसरी ओर, मार्क्स के केन्द्रीय महत्व के तीन महत्वपूर्ण आयाम थे : एक आर्थिक चिंतक के रूप में, इतिहास-चिंतक और विश्लेषक के रूप में और दरख़ीम तथा मैक्स वेबर के साथ समाज के आधुनिक चिंतन के सर्वस्वीकृत संस्थापक के रूप में। दार्शनिक के रूप में भी उनका अवदान गंभीर और महत्वपूर्ण है लेकिन उसके सही आकलन की योग्यता मुझमें नहीं है। लेकिन एक बात जो हमेशा प्रासंगिक बनी रही है और बनी रहेगी वह है मानव अर्थव्यवस्था के ऐतिहासिक रूप से एक अल्पकालिक विधि के रूप में पूँजीवाद की, और इसकी अनवरत विस्तार और संकेन्द्रण करनेवाली, संकट उत्पन्न करनेवाली और अपने से अपना रूपांतरण करनेवाली संचालन विधि की उनकी संकल्पना।

21वीं सदी में मार्क्स की प्रासंगिकता एक विचारणीय विषय है। समाजवाद का सोवियत स्वरूप - समाजवादी अर्थव्यवस्था स्थापित करने का अब तक का एकमात्र प्रयास - अब अस्तित्व में नहीं रहा। दूसरी ओर, भूमंडलीकरण का अत्यधिक और त्वरित विकास हुआ है और इसके साथ ही धनोत्पादन की असाधारण मानवीय क्षमता भी सामने आ चुकी है। इस परिघटना ने आर्थिक-सामाजिक क्रिया-कलापों के क्षेत्र में राष्ट्र-राज्यों की ताकत और उसके क्षेत्र-विस्तार को काफी सीमा तक कम कर दिया है और इसके परिणामस्वरूप उन सामाजिक-जनतांत्रिक आन्दोलनों की क्लासिकी नीतियों की ताकत भी घटी है जो राष्ट्रीय राज्य-व्यवस्थाओं को सुधारों के लिए मजबूर करते थे। बाजार-रूढ़िवाद के बढ़ते हुए महत्व के चलते देशों और क्षेत्रों के बीच आर्थिक विषमता में अत्यधिक बढ़ोत्तरी हुई है और पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की बुनियादी गति में महाविपत्ति का वैसा ही तत्व फिर से आ गया है जिसके चलते 1930 के बाद का सबसे गंभीर भूमंडलीय खतरा मँडरा रहा है।

हमारी उत्पादन क्षमता ने कम से कम संभावना के रूप में अधिकांश लोगों के लिए आवश्यकता पूर्ति की स्थिति से समृद्धि की स्थिति में पहुँचना आसान कर दिया है, उनके सामने शिक्षा सहित अन्य ऐसे विकल्पों का रास्ता खोल दिया है जिनकी वे पहले कल्पना भी नहीं कर सकते थे हालाँकि दुनिया की आबादी का बहुत बड़ा हिस्सा अभी वहाँ तक नहीं पहुँच पाया है। यह एक सच्चाई है कि बीसवीं सदी की अधिकांश अवधि में समाजवादी आन्दोलनों और सरकारों की भूमिका मूल रूप से आवश्यकता पूर्ति तक ही सीमित रही है और इनमें पश्चिम के अपेक्षाकृत सम्पन्न देशों में भी स्थिति लगभग यही रही है जहाँ दूसरे विश्व युद्ध के पश्चात लगभग बीस वर्षों में जनसंख्या का एक तबका ऐशो-आराम की जिंदगी गुजारने लायक हो गया था, फिर भी समृद्धि के क्षेत्र में पर्याप्त भोजन, वस्त्र, आवास, आय के स्रोत के रूप में रोजगार और संकट के समय लोगों की सहायता करने में सक्षम कल्याणकारी व्यवस्था के उद्देश्य समाजवादियों के लिए अब पर्याप्त कार्यक्रम नहीं रह गए हैं हालाँकि इनकी जरूरत तो होती ही है।

एक तीसरा पक्ष भी है जो नकारात्मक है। भूमंडलीय अर्थव्यवस्था के आश्चर्यजनक विस्तार ने पर्यावरण को उपेक्षित किया है और इसलिए अंधाधुंध और अनियंत्रित आर्थिक विकास पर लगाम लगाना जरूरी हो गया है। हमारे पर्यावरण पर आर्थिक विकास के खतरनाक प्रभावों को रोकने अथवा नियंत्रित करने और पूँजीवादी बाजार की आवश्यकताओं के बीच एक स्पष्ट द्वन्द्व खुल कर सामने आया है : लाभ की तलाश में विकास की अधिकाधिक निरंतरता। यही पूँजीवाद की सबसे कमजोर कड़ी है। इस समय यह कहना मुश्किल है कि दोनों में से जीत किसकी होगी - पर्यावरण की अथवा लाभ की अनियंत्रित मनोवृत्ति की।

इस परिप्रेक्ष्य में हम कार्ल मार्क्स को कैसे देखें - सम्पूर्ण मानवता के चिंतक के रूप में अथवा इसके किसी एक हिस्से के दार्शनिक के रूप में, अर्थशास्त्री के रूप में, आधुनिक समाज विज्ञान के संस्थापक पिता और मानव इतिहास की बुद्धिसम्मत समझ के मार्गदर्शक के रूप में? यह सब तो ठीक है लेकिन जिस बिन्दु को अताली ने प्रमुखता दी है वह है मार्क्स के चिंतक रूप का सार्वभौमिक विस्तार। पारंपरिक अर्थ में यह 'अन्तर-अनुशासनात्मक' नहीं है अपितु सारे अनुशासनों को एकजुट करता है। अताली का कथन है : "उनके पहले दार्शनिकों ने मनुष्य को एक साकल्यता के रूप में देखा है लेकिन वे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने दुनिया को एक पूर्ण इकाई के रूप में देखा जो एक साथ ही राजनैतिक, आर्थिक, वैज्ञानिक और दार्शनिक है।"

यह स्पष्ट है कि मार्क्स के लेखन-चिंतन का काफी बड़ा हिस्सा अब पुराना हो चुका है और इसका कुछ हिस्सा अब स्वीकारयोग्य नहीं रह गया है। यह भी स्पष्ट है कि उनका लेखन एक सम्पूर्ण पिण्ड के रूप में नहीं लिया जा सकता अपितु वह एक सतत विकासमान बौद्धिक परियोजना है। डॉग्मा अथवा किसी प्रकार के संस्थान समर्थित रूढ़िवाद के रूप में कोई भी इसे अब मानने के लिए तैयार नहीं है। उनके लेखन-चिंतन को इस रूप में लेना स्वयं मार्क्स के लिए भी अप्रीतिकर होता। लेकिन इसके साथ ही हमें इस विचार को भी खारिज कर देना चाहिए कि एक "सही" मार्क्सवाद है और एक "गलत" मार्क्सवाद है। मार्क्स की अनुसंधान-विधि से अलग-अलग परिणाम और राजनैतिक परिप्रेक्ष्य निकल सकते हैं। और ऐसा स्वयं मार्क्स के अनुभव में घटित हो चुका था। ब्रिटेन और नीदरलैण्ड में वे सत्ता-परिवर्तन को अपरिहार्य मानते थे जो घटित नहीं हुआ। ऐसे ही उनका विचार था कि ग्राम समुदाय अतंतः समाजवाद में रूपांतरित हो जाएँगे, यह भी घटित नहीं हुआ। काउत्सकी और वर्नस्टीन मार्क्स के उतने ही अधिक अथवा उतने ही कम उत्तराधिकारी हैं जितने कि प्लेखानोव और लेनिन। और इसीलिए प्रामाणिक मार्क्स और मार्क्स के जीवन काल के पश्चात एंगिल्स, काउत्सकी और लेनिन जैसे उनका सरलीकरण अथवा विकृत करनेवाले लोगों के बीच अताली द्वारा किए गए भेद के प्रति मैं आश्वस्त नहीं हूँ।

सबसे पहले रूसी बुद्धिजीवियों ने मार्क्स का गंभीर अध्ययन करने के पश्चात उनके विचारों को आत्मसात किया और अपने समाज के पिछड़ेपन को दूर करने और पश्चिम के आर्थिक विकास के मॉडल के अनुसार उस समाज का आधुनिकीकरण करने का प्रयास किया। इस क्रम में रूसी बुद्धिजीवियों द्वारा मार्क्स के चिंतन को सामाजिक रूपांतरण का जरिया बनाना जितना वैध था उतना ही वैध था मार्क्स द्वारा यह अनुमान लगाना कि रूसी ग्राम समुदायों के आधार पर सीधे समाजवादी संतरण संभव है अथवा नहीं। शायद मार्क्स के विचारों की सामान्य दिशा के मद्देनजर ऐसा सोचना ठीक ही था। सोवियत प्रयोग के विरुद्ध यह तर्क नहीं दिया जा सकता कि पूरी दुनिया में पूँजीवाद फैल जाने के बाद ही समाजवादी व्यवस्था का निर्माण किया जाय क्योंकि मार्क्स ने ऐसा न कहा था और न ही उनके ऐसा विश्वास करने का कोई प्रमाण मौजूद है। यह अनुभव पर आधारित था। बात यह थी कि रूस इतना पिछड़ा हुआ था कि वह समाजवादी समाज का एक व्यग्य-चित्र अथवा प्लेखानोव के शब्दों में "एक लाल चीनी साम्राज्य" के अलावा और कुछ भी नहीं बन सकता था। 1917 में मार्क्सवादी बुद्धिजीवियों सहित सभी रूसी बुद्धिजीवी प्लेखानोव से सहमत होते। दूसरी ओर, 1890 के दशक के तथाकथित "कानूनी" मार्क्सवादियों के खिलाफ भी अनुभववादी दलील दी जाती है क्योंकि ये मार्क्सवादी भी अताली की ही तरह यह मानते थे कि रूस में फलता-फूलता औद्योगिक पूँजीवाद लाना ही मार्क्सवादियों का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। जारशाही के दौरान उदार पूँजीवादी रूस का जन्म हो ही नहीं सकता था।

फिर भी मानव समाज और इतिहास के मार्क्स के विश्लेषण के तमाम केन्द्रीय पक्ष आज भी वैध और संगत हैं। स्पष्ट ही इसमें सर्वप्रथम हैं पूँजीवादी आर्थिक विकास की मोहासिक्त भूमंडलीय गतिकी तथा इसके पूर्व के पारिवारिक संरचना सहित मानवीय अतीत की विरासत के ऐसे सभी अंगों का विनाश करने की इसकी क्षमता का मार्क्स द्वारा किया गया विश्लेषण। मार्क्स ने इस बात पर भी जोर दिया है कि पूँजीवाद अतीत की विरासत के उन अंशों का भी विनाश करने में नहीं हिचकिचाता जिनसे यह स्वयं कभी लाभान्वित हुआ था। दूसरा है आतंरिक अन्तर्विरोध पैदा करनेवाले तनावों के अंतहीन दौर, उनके फौरी समाधान, संकट और परिवर्तन पैदा करनेवाला विकास और इन सबके चलते लगातार विस्तारित हो रहे भूमंडलीय बाजार में आर्थिक संकेद्रण तथा पूँजीवादी विकास के ढाँचे का मार्क्स द्वारा किया गया विश्लेषण। माओ का स्वप्न ऐसे समाज का था जो अनवरत क्रान्ति से अपना निरंतर नवीनीकरण करता रहे : पूँजीवाद ने इस उद्देश्य को परिवर्तन की उस ऐतिहासिक प्रक्रिया द्वारा पूरा कर लिया है जिसे मार्क्स का अनुसरण करते हुए शुम्पीटर ने अंतहीन "सृजनात्मक विनाश" कहा है। मार्क्स का मानना था कि इस प्रक्रिया का परिणाम होगा विशाल मात्रा में आर्थिक संकेन्द्रण और अताली जब यह कहते हैं कि इस प्रक्रिया में निर्णय लेनेवाले लोगों की संख्या एक हजार अथवा दस हजार होती है तो उनका भी मतलब ठीक यही होता है। मार्क्स का विश्वास था कि इस तरह का आर्थिक संकेन्द्रण करनेवाले पूँजीवाद को पीछे छोड़ा जा सकता है - एक ऐसी भविष्यवाणी जो संभव तो अभी भी लगती है लेकिन एक अलग अर्थ में, न कि मार्क्स के अर्थ में।

दूसरी ओर, उनकी यह भविष्याणी कि समाज की ओर उन्मुख एक विशाल सर्वहारा द्वारा "स्वत्ववहरण करनेवालों के स्वत्वहरण" से यह घटित होगा, पूँजीवाद के ढाँचे के विश्लेषण पर आधारित न हो कर अलग पूर्व-अनुमानित मान्यताओं के विश्लेषण पर आधारित था। अधिक से अधिक यह इस भविष्यवाणी पर आधारित था कि इंग्लैण्ड की तर्ज पर उद्योगीकरण मजदूरों के रूप में काम करनेवाली जनसंख्या को जन्म देगा। एक मध्यम-मार्गी भविष्यवाणी के रूप में इसमें सच्चाई थी लेकिन दूरगामी परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य में यह संभव नहीं हो पाएगा। 1840 के दशक के बाद मार्क्स और एंगिल्स भी राजनैतिक क्रान्ति करनेवाले सर्वहारा का बड़ा हिस्सा निर्धनता की ओर नहीं बढ़ रहा है। 1900 के आसपास जर्मन सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी के सम्मेलन पर टिप्पणी करते हुए एक अमेरिकी पत्रकार ने कहा था कि वहाँ जुटे हुए कामरेड गरीब नहीं लग रहे थे। लेकिन दूसरी ओर, दुनिया के अलग-अलग भागों के बीच और वर्गों के बीच आर्थिक विषमता में वृद्धि मार्क्स की कल्पना का "स्वत्ववहरण करनेवालों के स्वत्वहरण" का सिद्धांत अपेक्षित परिणाम नहीं पैदा करता। संक्षेप में, मार्क्स के विश्लेषण में भविष्य की आशा का संकेत तो था लेकिन यह विश्लेषण उस आशा का स्रोत नहीं था।

तीसरी बात को बड़े अच्छे ढंग से नोबेल पुरस्कार विजेता अर्थशास्त्री सर जॉन हिक्स के शब्दों में कही जा सकती है : "वे लोग जो इतिहास की गति को एक निश्चित स्वरूप देना चाहते हैं उनमें से अधिकांश मार्क्स के प्रवर्गों अथवा इन प्रवर्गों के किंचित संशोधित रूपों का प्रयोग करना चाहेंगे क्योंकि कोई अन्य विकल्प उपलब्ध है ही नहीं।"

इक्कीसवीं सदी में दुनिया के सामने आनेवाली समस्याओं के समाधानों की पूर्व-कल्पना करने की स्थिति में हम नहीं हैं लेकिन अगर इन समाधानों की सफलता का कोई संयोग बनता है तो उन्हें मार्क्स द्वारा पूछे गए प्रश्नों को फिर से पूछना पड़ेगा, चाहे वे मार्क्स के अनेक शिष्यों द्वारा दिए अथवा सुझाए गए उत्तरों से सहमत न भी हों।

- 'हाउ टू चेंज द वर्ल्ड' (2011) में शामिल निबंध

शीर्ष पर जाएँ